REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514
VOLUME - 8 | ISSUE - 9 | JUNE - 2019

अस्मिता विमर्श के आलोक में देशज/ अंचल अस्मिता और आंचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु

डॉ. उर्मिला पोरवाल
हिन्दी विभागाध्यक्ष, बैंगलोर.

अस्मिता का अर्थ है प्रतिष्ठित होने की अवस्था या भाव, अर्थात किसी वस्तु या बात के बारे में मन में उठने वाला वह भाव जिसके कारण महत्व प्राप्त हो या अभिमान किया जा सके। अतः अस्मिता विमर्श का आशय स्पष्ट है- कि अपने अस्तित्व के बोध को,, अपनी स्वतंत्र अस्मिता को, चिंतन के केंद्र में स्थापित करना। जो कि एक तरह से आत्मनिर्णय और आत्माभिव्यक्ति का प्रश्न है।

अस्मिता का सवाल मामूली सवाल नहीं है। इसे चलताऊ ढंग से नहीं देखना चाहिए। लेकिन विद्वानों द्वारा ऐसा किया गया,खासकर माक्र्सवादी आलोचकों ने अस्मिता से जुड़े साहित्यिक सवालों को कभी गंभीरता से नहीं लिया। अस्मिता पर चलाऊ नजरियां रखने के लिहाज से नामवरजी ने भी अस्मिता की परिभाषा को कुछ इस प्रकार लिखा है,- "भारतीय नवजागरण की मूल समस्या-स्वत्व निज भारत है। यह स्वत्व वही है जिसे आजकल अस्मिता कहते हैं।"

हिंदी साहित्य में मोटे तौर पर भक्तिकाल से अस्मिता विमर्श का आरंभ माना जाता है। साहित्य जगत में जब अस्मिता विमर्श की बयार चली तब स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक, आदिवासी, किन्नर एवं हाशिए पर डाली जाती रही अन्य अस्मिताओं को विमर्श का अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त हुआ। यही वजह है कि इन अस्मिताओं से जुड़े लेखकों ने एक मुहिम के तौर पर हिंदी साहित्य में हस्तक्षेप किया। उस समय हिंदी साहित्य के कुछ मठाधीशों ने इन उभरती अस्मिताओं का यह कहकर विरोध किया कि साहित्य तो साहित्य होता है, यह घटकवाद साहित्य में क्यों? दरअसल बात यह है कि इन अस्मिताओं को भद्र वर्ग की चालाकियों के कारण हाशिए पर पटक दिया गया था, इसलिए वे अपने-अपने स्तर पर अभिव्यक्ति की मांग करती हैं, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जिन अस्मिताओं की बात ऊपर कही गई है, उन अस्मिताओं से बनने वाला राष्ट्र-समाज ही भारत का मेहनतकश समाज है, जिसने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जिसका हमें स्वागत करना चाहिए ताकि हिंदी साहित्य पूर्णता के करीब भारतीय समाज का दर्पण सिद्ध हो सके। दूसरे शब्दों में कहें तो अस्मिता विमर्श इतिहास लेखन का नया आयाम है। यह विमर्श आधुनिकता की अवधारणा जो वैश्वीकरण की प्रक्रिया के समांतर वर्चस्ववादी सत्ता के निरंतर प्रतिरोध में प्रकट हुई से जुड़ा है।

उल्लेखनीय है कि अस्मिता संबंधी झगड़ों में हिन्दीभाषी क्षेत्र ही नहीं समूचा भारत आजादी के बाद अपनी बहुत ज्यादा ऊर्जा बर्बाद कर चुका है। पहले लोग यह सोचते थे भारत आजाद हो जाएगा तो शांति लौट आएगी, लेकिन भाषायी आधार पर राज्यों का गठन, अंग्रेजी हटाओ हिन्दी लाओ, तमिलनाडु

का हिन्दी विरोधी आंदोलन, विभिन्न इलाकों में पैदा हुए पृथकतावादी आंदोलन, राममंदिर आंदोलन, पिछड़ों के आरक्षण का आंदोलन आदि सभी आंदोलन अस्मिता से ही जुड़े आंदोलन हैं। इसके अलावा 1962, 1965 और 1971 का युद्ध भी इसी कोटि में आता है। यही वो अस्मिता विमर्श का वातावरण है जिसमें हिन्दी साहित्य समीक्षा में हिन्दी जाति, हिन्दी जातीयता की बहस जन्म लेती है।

नि:सन्देह अस्मिता की पेचीदगियों और वैचारिक सरणियों पर हिन्दी में संवाद वर्तमान समय में कम हो रहा है, लेकिन यह भी सत्य है कि यह दौर साहित्य में अस्मिता विमर्श का दौर है। साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी स्तरों पर हिस्सेदारी और अपने अधिकारों की मांग को लेकर हाशिए की अस्मिताओं का संघर्ष और स्वर उभरा हैं। अस्मिताओं के इस उभार को ज्यादा दिन नहीं हुए। लेकिन वर्ग, जाति, वर्ण, लिंग, स्थानिकता, सांस्कृतिक पहचान, विस्थापन आदि को आधार बना कर नई अस्मिताएं सामने आई हैं। इन्होंने समानता, न्याय, हिस्सेदारी और आत्मसम्मान के लिए प्रतिरोध, आंदोलन और संघर्ष को अपना मुक्ति पथ घोषित किया है।

यहां एक और पक्ष उल्लेखनीय है। वह यह कि इन्हीं अस्मिताओं के संदर्भ में आधिकारिक अनुभव के आधार पर किए जा रहे लेखन को भी स्वीकार किया जाना चाहिए। अस्मितामूलक विमर्श अभी भी संक्रमणकाल की प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। इसलिए जो अंतर्विरोध सतह पर दिखाई दे रहे हैं संभव है उनका यथार्थ कुछ और हो जैसे नदी के प्रवाह को सतह के पानी पर तैरते हुए तिनकों, पत्तों आदि की गति से देखा जाए या गहराई में बहते हुए पानी के संघर्षों को फोर्थ डाइमेन्शन से?

भारतेन्दु ने अस्मिता के सवाल से अपने साहित्य और आधुनिक काल के साहित्य का आरंभ किया है। इसी तारतम्य में एक बात ओर विचारणीय है कि यदि स्वत्व का अर्थ अस्मिता है तो इसका अर्थ यह भी है कि आधुनिक काल के इतिहास का आरंभ अस्मिता की राजनीति से होता है। राजनीतिक स्वाधीनता इस स्वत्व-प्राप्ति की पहली शर्त है। अस्मिता विवादों में राजनीतिक आयाम प्रमुख रहा है। अस्मिता का सवाल हमारे यहां सांस्कृतिक की तुलना में राजनीतिक ज्यादा है। अस्मिता की जब भी बातें होती हैं तो उसके पक्ष और विपक्ष में राजनीतिक तर्क ज्यादा दिए जाते हैं,उल्लेखनीय है अस्मिता की राजनीति तथा पूंजीवाद से माँ-बेटी का रिश्ता है। अस्मिता को पूंजीवाद से अलग करके नहीं देखा जा सकता। अस्मिता की राजनीति और पूंजीवाद अन्तर्ग्रथित हैं।

अस्मितामूलक विमर्श हिंदी साहित्य का एक बड़ा महत्वपूर्ण क्षेत्र है। अस्मितामूलक विमर्शों की खासियत है कि इनका सामाजिक ,सांस्कृतिक और राजनीतिक आधार होता है। अस्मिता के जिस रूप का जितना गंभीर सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आधार होगा उसकी साहित्यिक कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप उतने ही सशक्त होंगे। समकालीन परिप्रेक्ष्य में भी जिस गहराई और सघनता से अस्मिता विमर्श का रचनात्मक लेखन सामने आया है, उसमें से एक है देशज विमर्श।

देशज अर्थात आंचलिकता- अंचल शब्द से वास्तव में किसी खास जनपद या क्षेत्र का नाम दिमाग में उभकर सामने आता है और आंचलिकता उस जनपदीय या क्षेत्रीय विशिष्टताओं का अर्थ बोध देता है, व्युत्पत्ति एवं व्याकरण के दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि 'अंचल', 'आंचलिक' और 'आंचलिकता' ये तीनों शब्द मूल रूप में एक ही भाव से जुड़े हुए हैं अंग्रेजी में 'लोकल' और 'रीजन' शब्दों का अंचल शब्द से समानार्थी भाव निकाला जा सकता है 'लोकल' शब्द के द्वारा किसी स्थान विशेष की ध्वनी का आभास होता है जबकि 'रीजन' शब्द भूखंड अर्थ को व्यंजित करता है 'रीजन' शब्द निश्चित रूप से 'प्रादेशिक' भाव को सशक्त रूप से अभिव्यक्त करता है। अंचल एक देहात हो सकता है, एक भीड़-भाड़ वाले शहर का मुहल्ला भी हो सकता है या इन सब से दूर सघन वन में व्याप्त एक कस्बा भी, हमारे देश की विभिन्न अंचल ही हमारी संस्कृति का प्रतीक है, आंचलिकता एक प्रवृति है इसमें आदिम मनुष्य आधुनिकता से सर्वथा अपरिचित होता है उसे अपने जीवन के प्रति संतोष होता है, वह हताश नहीं है उसे अपनी अंचल के प्रति आस्था है विशिष्ट परम्पराओं के प्रति मोह है या यह कहना सर्वथा उचित होगा कि आंचलिक उपन्यास एक ऐसा औपन्यासिक प्रकार है, जिसमे किसी अंचल विशेष के भूभाग, जाति वर्ग को ध्यान में रखकर वहां के भौगोलिक सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश से सम्पूरित समग्र जीवन-पद्धति को स्थानीय,सामान्य भाषा के माध्यम से अत्यंत ही

सम्वेदनशील एवं यथार्थपरक अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया जाता है आंचलिक उपन्यास व्यक्ति प्रधान हो ही नहीं सकता वहां व्यक्ति का स्थान अंचल ले लेता है तथा अंचल हीं कथा का नायक बन जाता है आंचलिक उपन्यासों में जिन अंचल का चित्रण होता है उस अंचल प्रदेश विशेष की अपनी सामाजिक परिस्थितियां होती है उसके अपने संस्कार होते हैं इनकी जीवनयापन की शैली वेशभूषा, आवास व्यवसाय, मनोरंजन के साधन रीति-रिवाज मान्यताएं आदि आते हैं इसके अलावा अंचल का मनोजगत तथा आदि दैविक चेतना, अंधविश्वास टोना-टोटका,जादू, शकुन अपशकुन, व्रत उपवास के सम्बन्ध में असभ्य विश्वास नैतिक मूल्यों का पतन, मानव मन की विकृतियों का खुलेआम चित्रण ही आंचलिकता की विशेषता है आंचलिक उपन्यासों में जनजीवन का चित्रण स्थानीय बोली के प्रयोग से ही सजीव एवं साकार देखता है किन्तु एक अंचल की स्थिति दूसरे से भिन्न होती है। ग्रामीण वातावरण एवं वहां का पिछड़ेपन का चित्रण ही इसे नागरी संस्कृति से भिन्न बनाता है।

इस आधार पर आंचलिक उपन्यासों के संबंध में कुछ विद्वानों के मत दृष्टव्य है-

- हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार-"आंचलिक उपन्यासों में व्यावाहारिक रूप से स्थानीय दृश्यों, प्रकृति, जलवायु, त्यौहार, लोकगीत, बातचीत की विशिष्टता का ढंग मुहावरें, लोकोक्तियां, भाषा या उच्चारण की विकृतियाँ, लोगों की स्वभाव व व्यवहारगत विशेषताएं, उनका अपना रोमांस नैतिक मानताएं आदि का समावेश बड़ी सावधानी तथा सतर्कतापूर्ण ढंग से किया जाना अपेक्षित होता है आंचलिक उपन्यास किसी सीमित क्षेत्र विशेष के दायरे में लिखी जाती है किन्तु उसका प्रभाव व्यापक होता है।
- आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी के अनुसार" आंचलिक उपन्यास वह होता है जिसमे अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों का वैविध्यपूर्ण चित्रण होता हो
- डॉ.रामदरश मिश्र के अनुसार-"आंचलिक उपन्यास मानो ह्रदय में किसी प्रदेश की कसमसाती हुई जीवनानुभूति को वाणी देने का अनिवार्य प्रयास है....आंचलिक उपन्यास अंचल के समग्र जीवन का उपन्यास है
- मारिया एडवर्थ के अनुसार-"जिस उपन्यास में पात्रों का समग्र जीवन उस अंचल से प्रभावित होता है तथा जिसमे अंचल अपनी परम्पराओं के कारण अन्य अंचलों से भिन्न प्रतीत होता है, वह आंचलिक उपन्यास है
- डॉ. गोबिंद त्रिगुणायत के अनुसार"किसी अंचल विशेष की भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक विशेषताओं का अंकन करना ही आंचलिक उपन्यास का मुख्य उद्देश्य माना जाता है

आंचलिक उपन्यास की प्रमुख उपलब्धि है देश, काल या परिवेश को सर्वथा नवीन रूप में ग्रहण करना इनमें प्रदेश, विशेष या जाती विशेष के जीवन, प्रश्न, रीति-रिवाजों, प्रथा, परम्परा, आस्था, संस्कृति, लोक जीवन, बोली, गीत, लोककथा आदि का चित्रण विशेष कौशल और विस्तार से किया जाता है समसामयिक चेतना तथा आधुनिक भाव बोध इन उपन्यासों में गहराई के साथ उभरकर सामने आया है द्सामाजिक विषमता और राजनीतिक संघर्ष के साथ सामाजिक चेतना के विकास के साथ-साथ स्त्री चेतना का विकास भी इन उपन्यासों में अभिव्यक्त हुआ है इनके साथ्साथ आंचलिक उपन्यासकारों ने पारिवारिक विघटन, दाम्पत्य जीवन में बिखराव तनाव, बन्धुत्व भाव में त्याग और सहयोग के स्थान पर स्वार्थपरता आदि प्रवृतियों का अपने कृतियों में स्थान दिया है ग्रामीण जन जातीय समाज के परम्परागत स्वरूप को साहित्य के आँगन में प्रस्तुत कर इनकी समस्याओं से अवगत कराना ही इन उपन्यासकारों का ध्येय रहा है स्त्री चेतना के बुलंद स्वर भी इन उपन्यासों में स्पष्ट तौर पर देखने को मिलता है।

हिन्दी के आंचलिक उपन्यास की पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करें तो - हिन्दी में आंचलिक उपन्यास का आरम्भ 1930 के आसपास माना जा सकता है किन्तु स्वतन्त्रता से पूर्व भी कुछ ऐसे उपन्यास सामने आये जिसमे आंचलिकता के रंग समाहित थे इनमें प्रमुख हैं- आंचलिक परिवेश की श्रेणी में सबसे पहले नाम लिया जाना चाहिए, जिनकी कृति 'कासल रैकर्न्ट' 1800 में आई थी। भुवनेश्वर मिश्र का 'घराऊ घटना' (1893) और 'बलबंत भूमिहार'(1901) जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का 'बसंत मालती' (1899) हरिऔध का 'अधखिला फूल' (1907), गोपालराम गहमरी का

'भोजपुर की ठगी' (1912),रामचीज सिंह का 'वन विहंगनी' (1909), ब्रजनदंन सहाय के 'राधाकांत' और 'अरण्यबाला' (1915) भुवनेश्वर मिश्र के 'घराऊघटना' में समकालीन पारिवारिक जीवन का विस्तृत चित्रण वहां के सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुसार किया गया है तो 'बलबंत भूमिहार' में प्रदेशीय सामंतवादी जीवन का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने 'वसंत मालती' में मुंगेर जिले के मलयपुर अंचल को कथा का केंद्र बनाया है वहां के नदी, घाट, मठ, लोकगीत एवं लोकभाषा का प्रयोग करने वाले मल्लाहों का परिचय दिया है हरिऔघ के 'अधखिला फूल' में गोरखपुर जिले में स्थित ग्रामीण नारी जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को उठाया गया है साथ ही तथाकथित साधुसंतो के यथार्थ स्वरूप को भी चित्रित किया गया हैद्य क्षेत्रीय भाषा के प्रयोग के साथ-साथ लेखक ने आदर्श भारतीय ग्राम की छटा की भी अभिव्यंजना की है रामचीज सिंह ने 'वन विहंगिनी' में संथाल प्रदेश के प्राकृतिक और मानवीय दृश्यों का चित्रण किया है स्थानीय आदिवासियों अर्थात कोल जनसंस्कृति का वर्णन किया गया है गोपालराम गहमरी के 'भोजपुर की ठगी' में भोजपुरी इलाके की ठगी का मनमोहक वर्णन किया गया है ब्रजनन्दन सहाय का 'राधाकांत' आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ सामाजिक उपन्यास है वही 'अरण्यबाला' उपन्यास में विंध्याचल का एक पहाड़ी गाँव का वर्णन है यह एक उपदेश प्रधान और समाजवादी उपन्यास है 'रामलला' उपन्यास के द्वारा लेखक ने हिन्दू समाज की दुर्दशा एवं अव्यवस्था का समग्र चित्रण किया है रामलला को इसाई लडकी ऐनी से प्रेम हो जाता है किन्तु हिन्दू धर्म से अन्य प्रेम के कारण वह ऐनी के प्रेम को ठुकरा देता है रामलला को एक मौलिक सामाजिक उपन्यास माना जाना चाहिए वस्तुतः यह एक आंचलिक उपन्यास है

हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों की दिशा में सर्वप्रथम प्रयास श्री राधेश्याम कौशिक की पुस्तक 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास' है सन 1964 में श्री प्रकाश वाजपेयी कृत 'हिन्दी के आंचलिक उपन्यास' कृति प्रकाशित हुई इसमें चैदह उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास मानते हुए उनका सर्वेक्षण अपने 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद' नामक ग्रन्थ में किया है, नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची' (1948) उपन्यास मिथिला के जनजीवन की कथा को चित्रित करता है द्य यह नागार्जुन का पहला आंचलिक उपन्यास है 'बलचनमा' (1952) नागार्जुन का आंचलिक उपन्यास है इसमे एक गरीब किसान के बेटे बलचनमा की दुःख-दर्द भरी कहानी है नागार्जुन के 'नई पौध' (1953) मिथिला के सौराठ मेले के जरिए बेमेल विवाह को दर्शाया गया है 'वरुण के बेटे' (1957) में मिथिला के मछुआरों के जीवन को चित्रित किया गया है उग्रतारा (1963) में जेल-जीवन को चित्रित किया गया है द्य इसके अलावा 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन' आदि आंचलिक उन्यास नागार्जुन ने लिखे शिवप्रसाद मिश्र 'रूद्र' का काशी के जनजीवन पर आधारित 'बहती गंगा' (1952)उपन्यास भी आंचलिक उपन्यास माना जाता है द्य इसमें काशी के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन का दो सौ वर्षो का इतिहास अंकित है इसी समय फनीश्वरनाथ 'रेणु' का 'मैला आँचल' उपन्यास साहित्य में प्रवेश करता है, इस उपन्यास में बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव की कहानी है रेणु का दूसरा उपन्यास 'परती परिकथा' (1957) भी आंचलिक उपन्यास है इसमें लेखक ने पूर्णिया के 'परानपुर' गाँव को चुना जो कोसी के अंचल में स्थित है 'जुलूस' को रेणु आंचलिक उपन्यास माना गया है किन्तु इसमें सम्पूर्ण आंचलिक तत्वों का अभाव है अतः इसे अर्द्ध आंचलिक उपन्यास कहा जा सकता है उदयशंकर भट्ट के 'सागर लहरें और मनुष्य' (1955) में महानगरी मुंबई के पश्चिम तट पर स्थित बर्सोवा गाँव के मछुआरों का जीवन चित्रित किया गया है 'लोक परलोक' (1958) में भट्टजी ने पश्चिमी उत्तरप्रदेश के तीर्थ ग्राम पद्मपुरी के अंचल को मुखारित किया है देवेन्द्रनाथ सत्यार्थी के 'रथ के पहिए' (1953) में गोंड जाति के जीवन का चित्रण किया गया है कथा का अंचल करंजिया ग्राम है 'ब्रहमपुत्र' (1956) में आसाम के लोक जीवन को मुखरित किया गया है 'दूधगाछ' (1958) को भी आंचलिक उपन्यास की श्रेणी में रखा गया है इसमें केरल के लोक जीवन को स्थानीय रंगत के साथ चित्रित किया गया है रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारू' (1958) में करनटो के जीवन का चित्रण है यह विशुद्ध जनजातीय आंचलिक उपन्यास है 'राई और पर्वत' (1958) 'पंथ का पाप' (1960), 'धरती मेरा घर' (1961), 'आखिरी आवाज' (1963) भी उनके ग्रामीण लोकजीवन से सम्बन्धित उपन्यास है शैलेश मटियानी का 'हौलदार' (1960) कुमायूं के अल्मोड़ा के अंचल की कहानी है द्य 'चिट्ठी रसैन' (1961) में उडलगो गांव को कथा की पृष्ठभूमि में रखा गया है 'चैथी मुट्ठी' (1962) में कुमायूं के पर्वतीय अंचल के लोकजीवन को उभारा गया है यह एक लघु

आंचलिक उपन्यास है रामदरश मिश्र के 'पानी और प्राचीर' (1961) में गोरखपुर के स्थानीय भू-भाग को दर्शाया गया है 'सूरज किरन की छांह (1959) राजेन्द्र अवस्थी का आत्मकथात्मक शैली में लिखा हुआ आदिवासी गोंडो के जीवन को चित्रित करता है 'जंगल के फूल' (1960) में मध्यप्रदेश के आदिमजाति की कहानी तथा वन्य जीवन की सुन्दरता को दर्शाया गया है बलभद्र ठाकुर कृत 'मुक्तावती' (1955), 'आदिमनाथ' (1959), 'नेपाल की वो बेटी' आदि आंचलिक उपन्यास हैं अमृतलाल नागर कृत 'सेठ बांकेमल', 'बूंद और समुद्र' आदि उपन्यास में आंचलिक भाषा का प्रयोग किया गया है भैरवप्रसाद गुप्त का 'मशाल' (1951) को भी आंचलिक उपन्यास माना गया है हालाकि उपन्यास का मूल स्वर साम्यवादी चेतना है 'गंगा मैया' में किसानों का आंचलिक जीवन प्रगतिवादी चेतना के जरिये मुखरित हुआ है 'सती मैया का चैरा' (1959) उत्तरप्रदेश के गाँव पिटारी के जनजीवन पर आधारित है डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'बया का घोंसला और सांप' (1953) में ग्रामीण लोकजीवन और ग्रामीण समस्याओं का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है आनन्द प्रकाश जैन का 'आठवीं भंवर' (1969) स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर आधारित आंचलिक उपन्यास है शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी' (1967) पूर्वी उत्तरप्रदेश के वाराणसी क्षेत्र के करैता ग्राम की कथा प्रस्तुत करता है।

देशज अस्मिता और फनीश्वरनाथ 'रेणु' का 1954 में प्रकाशित 'मैला आँचल'--- 'रेणु' ने उपन्यास साहित्य में एक नई विधा को जन्म दिया, हालाकि नागार्जुन ने रेणु से पहले लिखना शुरु किया लेकिन मैला आँचल को हिन्दी का प्रथम श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यास माना जाता है इस उपन्यास में बिहार राज्य के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव की कहानी है इस गांव में रेणु इतना रम गए कि इस उपन्यास की भूमिका में वह लिखते है-"इसमें फूल भी है, शूल भी है, धुल भी है, गुलाल भी है, कीचड़ भी है, चंदन भी है सुन्दरता भी है कुरूपता भी है मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया, 'रेणु' जी का 'मैला आंचल' वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर सबसे अलग है। इसमें एक नए शिल्प में ग्रामीण-जीवन को दिखलाया इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि इसका नायक कोई व्यक्ति (पुरुष या महिला) नहीं है, पूरा का पूरा अंचल ही इसका नायक है। दूसरी प्रमुख बात यह है कि मिथिलांचल की पृष्ठभूमि पर रचे इस उपन्यास में उस अंचल की भाषा विशेष का अधिक से अधिक प्रयोग किया गया है। खूबी यह है कि यह प्रयोग इतना सार्थक है कि वह वहां के लोगों की इच्छा-आकांक्षा, रीति-रिवाज, पर्व-त्यौहार, सोच-विचार, को पूरी प्रामाणिकता के साथ पाठक के सामने उपस्थित करता है।

इसकी भूमिका, 9 अगस्त 1954, को लिखते हुए फणीश्वरनाथ 'रेणु' कहते हैं,

"यह है मैला आंचल, एक आंचलिक उपन्यास।"

इस उपन्यास के केन्द्र में है बिहार का पूर्णिया जिला, जो काफी पिछड़ा है। 'यही इस उपन्यास का यथार्थ है। यही इसे अन्य आंचलिक उपन्यासों से अलग करता है जो गांव की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखे गए हैं। गांव की अच्छाई-बुराई को दिखाता प्रेमचंद, शिवपूजन सहाय, शिवप्रसाद रुद्र, भैरव प्रसाद गुप्त और नागार्जुन के कई उपन्यास हैं जिनमें गांव की संवेदना रची बसी है, लेकिन ये उपन्यास अंचल विशेष की पूरी तस्वीर प्रस्तुत नहीं करते। बल्कि ये उपन्यासकार गांवों में हो रहे बदलाव को चित्रित करते नजर आते हैं। परन्तु 'रेणु' का 'मेरीगंज' गांव एक जिवंत चित्र की तरह हमारे सामने है जिसमें वहां के लोगों का हंसी-मजाक, प्रेम-घृणा, सौहार्द्र-वैमनस्य, ईर्ष्या-द्वेष, संवेदना-करुणा, संबंध-शोषण, अपने समस्त उतार-चढाव के साथ उकेरा गया है। इसमें जहां एक ओर नैतिकता के प्रति तिरस्कार का भाव है तो वहीं दूसरी ओर नैतिकता के लिए छटपटाहट भी है। परस्पर विरोधी मान्यताओं के बीच कहीं न कहीं जीवन के प्रति गहरी आस्था भी है "मैला आंचल में"!

पूरे उपन्यास में एक संगीत है, गांव का संगीत, लोक गीत-सा, जिसकी लय जीवन के प्रति आस्था का संचार करती है। एक तरफ यह उपन्यास आंचलिकता को जीवंत बनाता है तो दूसरी तरफ उस समय का बोध भी दृष्टिगोचर होता है। 'मेरीगंज' में मलेरिया केन्द्र के खुलने से वहां के जीवन में हलचल पैदा होती है। पर इसे खुलवाने में पैंतीस वर्षों की मशक्कत है इसके पीछे, और यह घटना वहां के लोगों का विज्ञान और आधुनिकता को अपनाने की हकीकत बयान

करती है। भूत-प्रेत, टोना-टोटका, झाड़-फूक, में विश्वोस करनेवाली अंधविश्वासी परंपरा गनेश की नानी की हत्या में दिखती है। साथ ही जाति-व्यवस्था का कट्टर रूप भी दिखाया गया है। सब डॉ.प्रशान्त की जाति जानने के इच्छुक हैं। हर जातियों का अपना अलग टोला है। दलितों के टोले में सवर्ण विरले ही प्रवेश करते हैं, शायद तभी जब अपना स्वार्थ हो। छूआछूत का महौल है, भंडारे में हर जाति के लोग अलग-अलग पंक्ति में बैठकर भोजन करते हैं। और किसी को इसपर आपत्ति नहीं है।

'रेणु' ने स्वतंत्रता के बाद पैदा हुई राजनीतिक अवसरवादिता, स्वार्थ और क्षुद्रता को भी बड़ी कुशलता से उजगर किया है। गांधीवाद की चादर ओढे हुए भ्रष्ट राजनेताओं का कुकर्म बड़ी सजगता से दिखाया गया है। राजनीति, समाज, धर्म, जाति, सभी तरह की विसंगतियों पर 'रेणु' ने अपने कलम से प्रहार किया है। इस उपन्यास की कथा-वस्तु काफी रोचक है। चरित्रांकन जीवंत। भाषा इसका सशक्त पक्ष है। 'रेणु' जी सरस व सजीव भाषा में परंपरा से प्रचलित लोककथाएं, लोकगीत, लोकसंगीत आदि को शब्दों में बांधकर तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिवेश को हमारे सामने सफलतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं।

अपने अंचल को केन्द्र में रखकर कथानक को "मैला आंचल" द्वारा प्रस्तुत करने के कारण फणीश्वरनाथ 'रेणु' हिन्दी में आंचलिक उपन्यास की परंपरा के प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। अपने प्रकाशन के 64 साल बाद भी यह उपन्यास हिन्दी में आंचलिक उपन्यास के अप्रतिम उदाहरण के रूप में विराजमान है। यह केवल एक उपन्यास भर नहीं है, यह हिन्दी का व भारतीय उपन्यास साहित्य का एक अत्यंत ही श्रेष्ठ उपन्यास है और इसका दर्जा क्लासिक रचना का है। इसकी यह शक्ति केवल इसकी आंचलिकता के कारण ही नहीं है, वरन् एक ऐतिहासिक दौर के संक्रमण को आंचलिकता के परिवेश में चित्रित करने के कारण भी है। बोली-बानी, गीतों, रीतिरिवाजों आदि के सूक्ष्म ब्योरों से है। जहां एक ओर अंचल विशेष की लोकसंस्कृति की सांस्कृतिक व्याख्या की गई है वहीं दूसरी ओर बदलते हुए यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में लोक-व्यवहार के विविध रूपों का वर्णन भी किया गया है। इन वर्णनों के माध्यम से 'रेणु' ने "मैला आंचल" में इस अंचल का इतना गहरा और व्यापक चित्र खींचा है कि सचमुच यह उपन्यास हिन्दी में आंचलिक औपन्यासिक परंपरा की सर्वश्रेष्ठ कृति बन गया है। फणिश्वलरनाथ 'रेणु' का "मैला आंचल" हिन्दी साहित्य में आंचलिक उपन्यास की परंपरा को स्थापित करने का पहला सफल प्रयास है। रेणु के अन्य उपन्यास भी जैसे 'परती परिकथा'(1958), 'जुलूस', 'दीर्घतपा', 'कलंक मुक्ति', व 'पलटू बाबू रोड' में अंचल विशेष के सजीव चित्र प्रस्तुत हुए हैं।

किसी भी औपन्यासिक कृति को सफल आंचलिक कृति बनाने में आंचलिक प्रवृति का सर्वाधिक योगदान रहता है आंचलिक प्रवृति या दृष्टि के बिना कोई भी रचनाकार अंचल विशेष की उस वास्तविकता से परिचित नहीं हो सकता है, रेणु का झारखंड से उनका गहरा रिश्ता था. इस गहरे रिश्ते की रचनात्मक स्वीकारोक्ति है उनकी दो बहुपठित-प्रशंसित रचनाएं "तीसरी कसम" और "मैला आंचल".देशज रेणु और रेणु के देशज लेखन पर जिसे हिंदी साहित्य में रेखांकित नहीं किया गया. किसी आलोचक, अध्येता अथवा साहित्यकार ने 'मैला आंचल' को देशज जन की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति नहीं माना. न ही देश में झारखंड जैसे विभिन्न अस्मिताओं के आंदोलनों का समर्थन करते हुए साहित्य में स्थान दिया. रेणु हमारे समय के सबसे संवेदनशील कथाकार हैं. इसलिए नहीं कि उन्होंने ग्रामीण जीवन का आधुनिक महाकाव्य 'मैला आंचल' देशज जबान में लिखा बल्कि इसलिए कि वे स्वयं भी देशज थे. देशज विचारों और संघर्ष की सबसे उम्दा सांस्कृतिक अभिव्यक्ति. जिसे आचंलिक कहकर हिंदी साहित्य और उसके मठाधीशों ने उन्हें नकारने की पूरी कोशिश की. यह अलग बात है कि देशज अस्मिता ने उन्हें लोकप्रिय बनाया और वे प्रथमतः लोक में प्रतिष्ठित हुए बाद में आलोचकों ने. हालांकि उनके समकालीन रामविलास शर्मा से लेकर आज के नामवर सिंह ने कभी उनके रचनाकर्म पर नहीं लिखा. बावजूद इसके रेणु का लेखन कभी भी आलोचकों का मोहताज नहीं रहा. उनके जोड़ का रचनाकार जिसकी लेखनी देशज अस्मिता और उसकी चिंताओं में गहरी धंसी हो और कोई दूसरा नहीं हुआरेणु के जीवन और रचनाकर्म पर अध्येताओं ने देशज अस्मिता के संदर्भ में अध्ययन नहीं किया है. इसलिए यह बात अनउद्घाटित ही रह गई कि 'मैला आंचल' देशज अस्मिताओं के उभार को प्रमुखता से रचनेवाला भारत का पहला उपन्यास है. 1954 में जब मैला आंचल छपा था, उस समय तत्कालीन बिहार में कई चरणों में चलनेवाले ऐतिहासिक झारखंड अलग राज्य आंदोलन का पहला

चरण पूरे उफान पर था. जयपाल सिंह मुंडा, इग्नेस बेक आदि के नेतृत्व में झारखंड पार्टी का आंदोलन सबसे सुनहरे दौर में था. इसका असर 1952 में दिखा जब चुनाव हुए चुनाव में झारखंड पार्टी ने सभी 32 सीट जीतकर कांग्रेस को और समूचे देश को यह संदेश बखूबी दे दिया था कि अलग झारखंड आज नहीं तो कल एक हकीकत होगा. तो 1950 का दशक झारखंड के नगाड़ों की गूंज से धमक रहा था और उसी दौर में रामविलास शर्मा के 'हिंदी-हिंदुस्तान' के नारे के समानांतर राहुल सांस्कृत्यायन देशज भाषाओं की वकालत कर रहे थे सांकृत्यायन भोजपुरी और ठेठ गंवई भाषा में रचनाएं कर देशज अस्मिता और उनके भाषाओं को प्रतिष्ठित कर रहे थे. जबकि अधिकांश रामविलास शर्मा के साथ थे और जनपदीय भाषाओं को 'राष्ट्रभाषा' के विस्तार में बाधा मान रहे थे. हलांकि प्रथमद्रष्टया रामविलास जी भी आपको देशज भाषाओं के खिलाफ नहीं प्रतीत होंगे लेकिन जब आप उनके पूरे लेखन-आग्रह पर सूक्ष्म दृष्टि डालेंगे तो पाएंगे कि वे कैसे हिंदी के पक्ष में सभी जनभाषाओं के बलिदान के लिए माहौल बना रहे थे. हिंदी के उस 'राष्ट्रीय' उबाल के बीच परिनिष्ठित हिंदी में यदि रेणु ने 'मैला आंचल' नहीं लिखा तो उसकी वजहें थीं जिस पर हिंदी साहित्य में चुप्पी है. एक ऐसी भाषा (अब अंगरेजी) जो मानक मानी जा रही हो और जिसमें सम्मान, पुरस्कार पद-प्रतिष्ठादि के सारे अवसर हों, उसे ठुकरा कर देशज जबान को स्वीकार करना तब भी और आज भी एक आत्मघाती लेखकीय फैसला माना जाता है. पर रेणु ने साहस किया क्योंकि वे अस्मिताओं के पक्ष में थे, समाजवादी आंदोलनकारी थे और झारखंड आंदोलन से प्रभावित थे. उनके और झारखंड के बीच गहरे अनुराग की दूसरी मजबूत कड़ी स्वयं लतिका थीं यह अभी भी स्वीकार नहीं किया जाएगा जब झारखंड एक हकीकत है कि 'मैला आंचल' की रचना झारखंड आंदोलन की देन है. तर्क बहुत सारे हैं जिनके लिए यहां स्थान नहीं है परंतु हमारी यह स्पष्ट मान्यता है कि 'मैला आंचल' भारतीय राज्यसत्ता द्वारा उत्पीड़ित अस्मिताओं की प्रथम प्रतिनिधि रचना है. जिसमें देशज अस्मिता अपने परिवेश, पर्यावरण, संस्कृति और देशज जन के साथ समूची की समूची अभिव्यक्त हुई है

संदर्भ ग्रंथ

1. नामवर सिंह और अस्मिता विमर्श-श्समीक्षा के सीमांतश् जगदीश्वर चतुर्वेदी
2. हिन्दी का गद्यपर्व, 2010, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 87
3. जनसत्ता आलेख-20 मई 2018
4. हिन्दी उपन्यास का अंतर्यात्रा-डॉ.रामदरश मिश्र, पृ.32
5. पिछले दशक की देन,आंचलिक उपन्यास साहित्य का संदेश-श्री विश्वंभरनाथ उपाध्याय द्द्पृ.6
6. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास-कान्ति वर्मा पृष्ठ-184
7. शास्त्रीय समीक्षा के सिदाध्न्त द्द डॉ. गोबिंद त्रिगुणायत,पृष्ठ-432
8. मैला आँचल द्दफनीश्वरनाथ रेणु (भूमिका)
9. अलग-अलग वैतरणी द्दशिवप्रसाद सिंह पृ.404
10. रतिनाथ की चाची-नागार्जुन पृ.47
11. नई पौध-नागार्जुन-पृ.80
12. कुम्भीपाक-नागार्जुन-पृ.82
13. पारो-नागार्जुन-पृ.49
14. वही पृ.53
15. बया का घोसला और सांप-लक्ष्मीनारायण लाल पृ.137
16. जंगल के फूल-राजेन्द्र अवस्थी,पृ-189
17. वरुण के बेटे-नागार्जुन, पृ.79
18. जुलूस-रेणु, पृ.139
19. परती परिकथा-रेणु पृ.121

20. वीकीपीडिया
21. साहित्यिक पत्रिकाएं

LBP PUBLICATION